उपभोक्ता कानून और आम उपभोक्ता

डॉ. बसन्ती लाल बाबेल
निदेशक, राजस्थान विधि संस्थान
पूर्व न्यायाधीश एवं
शासन उपसचिव, गृह (विधि)

उपभोक्ता हितों के संरक्षण के लिए सन् 1986 में बना उपभोक्ता कानून लगभग दो दशक पूरे कर रहा है । इन दो दशकों में उपभोक्ता कितना जागरूक हुआ और उसके हित कहां तक संरक्षित हुए , आज यह सोच एवं चिन्तन का विषय हैं ।

पिछले बीस वर्षो में इस कानून में सन् 1993 एवं सन् 2002 में व्यापक संशोधन किये गये। जिला उपभोक्ता मंचो, राज्य उपभोक्ता आयोगों एवं राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग की अधिकारिता में वृद्धि कर उन्हें क्रमशः बीस लाख, एक करोड़, एवं एक करोड़ रूपये से अधिक राशि के मामलों की सुनवाई की शक्तियाँ दी गई । परिवाद के निपटारों की अधिकतम समय सीमा निर्धारित की गई । आदेशों की क्रियान्विती सुनिश्चित किये जाने के प्रावधान भी किये गये । लेकिन ये परिवर्तन कितने सार्थक रहे, आज विचार के विषय हैं ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है । इसकी लगभग 80 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है । इनके दैनिक जन-जीवन से जुड़े छोटी धनराशि के विवाद होते हैं । बीस लाख और एक करोड़ की राशि के उपभोक्ता विवादों की संख्या नगण्य हैं । प्रश्न यह है कि गांवों की जनता इन उपभोक्ता मंचों से कितनी लाभान्वित हुई है? यह कटु सत्य है कि अधिकांश उपभोक्ता अदालतों में मामलों की संख्या नगण्य है यह भी कटु सत्य है कि बीच में कई उपभोक्ता अदालतें

वर्षो तक पीठासीन अधिकारियों के अभाव में बन्द रहें । कुछेक मामले निर्णीत भी हुए तो वर्षो तक उनकी क्रियान्विती नहीं हो सकी। नतीजा यह हुआ कि इन उपभोक्ता अदालतों के प्रति आम उपभोक्ता की उदासीनता बढ़ती गई । आज आम उपभोक्ता इन उपभोक्ता अदालतों में जाने से कतराता है क्योंकि एक तो वर्षो तक उसके विवाद का निपटारा नहीं होता और यदि हो भी जाता है तो समय पर उसकी क्रियान्विती नहीं हो पाती ।

उपभोक्ता कानून के प्रति आम आदमी की जागरूकता भी कम है । अधिकांश ग्रामीण व्यक्ति इस कानून से परिचित तक नहीं है । यदि कुछ परिचित भी हैं तो वे अपनी तुच्छ राशि के परिवादों को जिला मुख्यालय पर ले जाने का साहस अथवा साधन नहीं जुटा पाते हैं । परिणाम यह है कि उपभोक्ता संरक्षण कानून के होते हुए भी यह आम उपभोक्ता के लिए बेखबर एवं नहीं के बराबर हैं ।

अब तक केवल उपभोकता के अधिकारों की बात की जाती रही है । उपभोक्ता के कर्तव्यों की बात कोई नहीं करता । हम यह जानते हैं कि कर्तव्यों के निर्वहन पर ही अधिकारों का अस्तित्व निर्भर करता है । आज कितने उपभोक्ता ऐसे हैं जो माल क्रय करते समय उसका बिल लेते हैं, वारन्टी कार्ड लेते हैं, मुद्रित कीमत पर ध्यान देते हैं, औषधियों की एक्सपायरी डेट देखते हैं । उपभोक्ता मंच परिवादों के निपटाने के समय उपभोक्ता से इन सभी बातों की साक्ष्य प्रमाण चाहते हैं। साक्ष्य एवं प्रमाण के अभाव में आम उपभोक्ता न्याय से वंचित रह जाता है ।

फिर आज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आम उपभोक्ता बाजार में छला जा रहा है। न्यूनतम लागत से निर्मित माल या वस्तु की अधिकतम कीमत वसूल की जा रही है । माल एवं वस्तुओं के मूल्य पर कोई नियंत्रण नहीं है । लागत - मूल्य एवं विक्रय मूल्य के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। जब तक लागत मूल्य एवं विक्रय मूल्य के बीच की खाई को पाटने का प्रयास नहीं किया जाता, उपभोक्ता संरक्षण कानून आम उपभोक्ता के लिए अर्थहीन एवं बेमानी है ।

अतः आज आवश्यकता उपभोक्ता संरक्षण कानून को इतना व्यवहारिक बनाने की है कि आम उपभोक्ता उससे लाभान्वित हो सके । उपभोक्ता जागरूक हो, उपभोक्ता अदालतें ग्रामीण अंचल तक पहूँचे, समय पर परिवादों का निपटारा हो, आदेशों की क्रियान्विती सुनिश्चित हो, माल की कीमतों पर नियंत्रण लगे, यही समय की मांग है ।